THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-07-26

Diaspora Dollars Are Coming, But...

...India needs export resilience, not quick fixes

ET Editorials

RBI's scheme to soak up diaspora dollars is running smoothly as expected. Banks have mobilised $17.40 bn from NRIs during a special drive to raise fresh FCNR(B) — foreign currency non-resident (bank) — deposits. The apex bank's scheme, which was operationalised on June 8 and will run till September 30, allows banks to raise 3- and 5-yr deposits without hedging the currency risk. Since the central bank is absorbing the currency risk, banks are offering higher tax-free returns on these deposits. Going by the response to the scheme, it could draw in $50 bn by September.

The central bank has used this measure on earlier occasions of dollar flight, such as during the US Federal Reserve's taper tantrum in 2013, and earlier in 2000 and 1998. The response had been robust each time, and earlier fundraising drives provide a rough estimate of collections for this year. The rupee has been under pressure since the US war on Iran and the crisis that has followed in West Asia, and special dollar deposits by NRIs should help strengthen forex reserves. Deposit growth at Indian banks has been lagging credit growth, and the special FCNR(B) scheme could also help address the imbalance. Private and foreign banks have been tight-lipped about their targets and collections, but public sector banks are more open about both. Banks must disclose daily data on FCNR(B) deposits to RBI.

Special rates for overseas investors are warranted when a country faces macroeconomic instability, but they distort market pricing and become a liability for banks. Likewise, absorbing hedging risks makes this an expensive intervention for the central bank's balance sheet. India has restricted the use of special NRI deposits to exceptional circumstances, knowing well that such schemes work, albeit at a cost. Yet, repeated recourse to the measure over the decades speaks to the fragility of India's balance of payments. India must build greater resilience into its export earnings to avoid emergency measures like special NRI deposits.

Date: 22-07-26

How to Remember To Judiciously Forget

ET Editorials

Last month, Delhi High Court took a major step in shaping India's evolving 'right to be forgotten' jurisprudence. By holding that the right flows from the Constitution's Article 21's guarantee of privacy, the judgment establishes a framework for de-indexing judicial records and masking personal identifiers in publicly accessible court records. The court recognised the perpetual availability of digital records can cause lasting reputational harm. Relief may be unavailable in cases involving offences against women or children, breaches of public trust, or other matters where overriding public interest justifies continued

access. The right can't become a means of rewriting history or shielding information relevant to public accountability.

But now comes a more difficult question: who determines what constitutes a legitimate public interest, and by what standards? This assumes particular importance in an era of rapid digitalisation, where personal information can be replicated, indexed and analysed at scale. India isn't alone in being concerned. The EU recognises a version of the right to be forgotten under GDPR, while courts in Britain have acknowledged delisting rights against search engines, subject to a careful balancing of privacy and public interest.

GoI, in consultation with stakeholders, should establish clear standards governing masking and de-indexing of publicly accessible information. Such clarity is essential as personal data is generated and shared at unprecedented volumes, and advances in AI enable information to be collected, processed and repurposed in ways earlier unimaginable. Success of India's right-to-be-forgotten regime will depend not on whether the right exists but on how carefully its limits are defined.

दैनिक भास्कर

Date: 22-07-26

रिसर्च पर खर्च बढ़ाए बिना टेक्नोलॉजी में कैसे बढ़ेंगे?

संपादकीय

विगत सप्ताह कुल 1.27 लाख करोड़ के फंड के साथ इंडिया सेमीकंडक्टर मिशन (आईएसएम)-2 शुरू हुआ। मंत्री के अनुसार ध्येय है- देशज चिप डिजाइन, उसका उत्पादीकारण, प्रक्रिया के इकोसिस्टम में पार्टनर्स आकर्षित करना और टैलेंट का विकास। दरअसल आखिरी ध्येय सबसे पहले होना चाहिए था। देशज चिप डिजाइनिंग में अभी तक हम क्यों पिछड़े ? क्यों हमें भारी तादाद में पानी और बिजली सोखने वाली मात्र कुछ फाउंड्रीज से संतोष करना पड़ा ? कारण था, शोध पर जीडीपी का मात्र 0.64% खर्च करना, जो चीन, यूएस या ईयू तो छोड़िए, वैश्विक औसत का भी एक-चौथाई है। डिजाइनिंग को वरीयता देना सरकार का सही कदम है, लेकिन साथ ही इंडस्ट्रीज पर भी दबाव डालना होगा कि वे शोध में अंशदान करने में कोताही न करें। चीन जैसे देश में जहां निजी क्षेत्र कुल शोध व्यय का दो-तिहाई से ज्यादा खर्च करते हैं, वहीं भारत के निजी क्षेत्र हमेशा सरकारी शोध की पीठ पर बैठकर लाभ कमाना चाहते हैं भारत को चिप डिजाइन के क्रम में पहले 28 एनएम चिप निर्माण से आगे बढ़ना होगा। आज भी दुनिया 75% चिप इसी किस्म के हैं, जो स्मार्ट फोन, गाड़ियों, पॉवर ग्रिड और मेडिकल उपकरणों में इस्तेमाल होते हैं। कम एनएम के चिप आधुनिक हथियारों में इस्तेमाल होते हैं। दक्षिण कोरिया, ताइवान, जापान,

अमेरिका और चीन सेमी कंडक्टर में महारत को एक नए सौदेबाजी वाले टूल के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। सरकार कदम बढ़ा चुकी, निजी क्षेत्र को आगे आना होगा।

Date: 22-07-26

ट्रम्प का अमेरिका अब हमारे लिए भरोसेमंद नहीं लगता

मनोज जोशी, (विदेशी मामलों के जानकार)

बीते एक साल में भारत और अमेरिका के रिश्तों में कई निराशाजनक पड़ाव आए हैं। ट्रम्प के भारत-पाक युद्ध में मध्यस्थता के दावे को लेकर विवाद, रूसी तेल आयात के कारण लगाए टैरिफ, पाकिस्तान को अहमियत देना आदि। इस साल की शुरुआत में दोनों देशों के बीच ट्रेड डील को लेकर उम्मीदें थीं, लेकिन नई दिल्ली में वार्ता और दावों के बावजूद इसमें भी कुछ ठोस हाथ नहीं लग पाया है। भारत पर पहले ही यूएस ट्रेड रिप्रजेंटेटिव की ओर से सेक्शन 301 के तहत प्रस्तावित 12.5% अतिरिक्त टैरिफ का खतरा मंडरा रहा है। यह ट्रैरिफ कथित तौर पर बंधुआ मजदूरी के जरिए बनी वस्तुओं के आयात के आरोप में प्रस्तावित किया गया है। अब ऐसी खबरें भी हैं कि यदि अमेरिकी कांग्रेस में एक बिल पारित हो जाता है तो रूसी तेल आयात करने के कारण भारत पर 100% दंडात्मक टैरिफ भी लगाया जा सकता है।

अमेरिका ने 8-9 जुलाई को चाबहार बंदरगाह समेत ईरान के सैन्य ठिकानों पर जबरदस्त हमले किए। इसी माह की शुरुआत में हुए हमलों में भारत द्वारा संचालित शाहिद बेहेश्ती पोर्ट टर्मिनल का वॉच टावर भी ध्वस्त कर दिया गया। पिछले साल के आखिर में ईरान युद्ध शुरू होने से पहले ही अमेरिका ने चाबहार परियोजना को लेकर भारत पर प्रतिबंध लगा दिए थे। भारत ने बीते एक दशक में इस परियोजना पर काफी धन और प्रयास खर्च किए थे। ईरान युद्ध में भारत द्वारा अमेरिका-इजराइल पक्ष का समर्थन करने का भी इन हालात पर कोई फर्क नहीं पड़ा। इसके बावजूद भारतीय नाविकों वाले जहाजों पर अमेरिकी हमले हुए, जिनमें लोग मारे गए। अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रुबियो ने भारत के कूटनीतिक विरोध को खारिज करते हुए कह दिया कि नाकेबंदी का उल्लंघन स्वीकार नहीं होगा।

हिन्द-प्रशांत क्षेत्र के प्रति अमेरिकी रवैया भी उतना ही चिंताजनक है। इस क्षेत्र में चीन का मुकाबला करने के लिए 'क्वाड' जैसे मंचों के जरिए भारत को प्रमुख साझेदार माना जाता था। 2025 में भारत में क्वाड समिट होनी थी और उम्मीद थी कि ट्रम्प इसमें शामिल होंगे। लेकिन समिट नहीं हो पाई और इस वर्ष भी होने की संभावना नजर नहीं आती। इधर अमेरिका और चीन की नजदीकी बढ़ रही है। मई में ट्रम्प ने चीन यात्रा की और अब सितंबर में जिनपिंग की अमेरिका यात्रा संभावित है। ऐसे में लगता है कि अमेरिका ने अपनी इंडो-पैसिफिक नीति

के औचित्य को ही कमजोर कर दिया है। शायद इसी की पुष्टि के लिए अमेरिका की इंडो-पैसिफिक कमांड ने हाल ही में अपना पुराना नाम 'यूएस पैसिफिक कमांड' फिर से रख लिया।

हमें यह भी समझना होगा कि तथाकथित 'मिडिल पावर्स' अपने दम पर चीन का सामना करने में अक्षम हैं। परंपरागत रूप से यह अमेरिका ही है, जो दक्षिणी चीन समुद्र और ताइवान की खाड़ी में चीन की आक्रामकता को चुनौती देने की ताकत मुहैया कराता रहा है। ट्रम्प के नेतृत्व वाला अमेरिका अब उतना भरोसेमंद नहीं दिखाई देता। लेकिन माहौल में बदलाव दिख रहा है। जापान का सैन्य विस्तार अब आकार लेने लगा है। 2027 तक जापान रक्षा खर्च के मामले में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा देश बन जाएगा। भारत को भी दक्षिण-पूर्व एशिया में अपनी सैन्य तैनाती और गतिविधियों को तेज करना होगा। फिलीपींस और इंडोनेशिया को ब्रह्मोस मिसाइल सिस्टम बेचकर उसने बेहतर शुरुआत की है।

भारत अपनी हिन्द-प्रशांत रणनीति को अमेरिका के भरोसे नहीं छोड़ सकता। जिस रणनीतिक जिम्मेदारी को वहन करने का वचन कभी क्वाड ने दिया था, वो अब भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया के कंधों पर आ गई है। ऐसे में हमारा काम ऐसी संतुलनकारी 'मिनिलेटरल व्यवस्था' बनाना है, जो अमेरिकी रुख से प्रभावित हुए बिना हिन्द-प्रशांत क्षेत्र को संभाल सके।

Date: 22-07-26

कानून के पेशे में ही अपराधी होंगे तो न्याय कैसे मिलेगा?

विराग गुप्ता, (सुप्रीम कोर्ट के वकील)

सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस ने वास्तव में फर्जी डिग्रीधारियों को "कॉकरोच" कहा था, लेकिन सोशल मीडिया से वायरल हुआ यह "कॉकरोच" शब्द अब व्यवस्था के गले की हड्डी बन गया है। इतिहास में झांकें तो पाएंगे कि जेपी, वीपी सिंह और अण्णा हजारे के आंदोलनों के बाद सरकारें भले बदल गई हों, पर व्यवस्था नहीं बदली। नीट पेपर लीक पर अगर केंद्रीय शिक्षा मंत्री का इस्तीफा हो भी जाए तो शिक्षा और परीक्षा को ठगने वाले संगठित गिरोह को आपराधिक दंड दिए बगैर सिस्टम कैसे दुरुस्त होगा?

केंद्रीय गृह सचिव एनएन वोहरा की अक्टूबर 1993 में प्रस्तुत वोहरा समिति की रिपोर्ट में माफिया, राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच की सांठगांठ (नेक्सस) पर चौंकाने वाले खुलासों से हमारे गणतंत्र की त्रासदी उजागर हुई थी। इसके तीन दशक से भी अधिक समय के बाद इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज विनोद दिवाकर के ताजा फैसले से नया रोडमैप नजर आ रहा है। यह इटावा का वह आपराधिक मामला था, जिसमें वकील और उनके परिवार भी पक्षकार थे। वकालत में अपराधियों और गैंग्स्टर्स के प्रचलन पर क्षोभ व्यक्त करते हुए जज ने कहा कि कानून

का शासन दो बार मरता है- पहली बार जब वकील अपराधी बन जाते हैं और दूसरी बार जब न्यायाधीश साहस की जगह चुप्पी को चुनते हैं। न्यायिक व्यवस्था के विरोधाभासों से जुड़े 4 मुद्दों को समझना जरूरी है।

1. जजों के साथ बदतमीजी करते हुए लॉ के एक छात्र ने चीफ जस्टिस को अपशब्द कहे थे। सोशल मीडिया में बढ़ रही अभद्रता और रीलबाजी रोकने के लिए बार काउंसिल ने भी दिशा-निर्देश जारी किए हैं। लेकिन समस्या की जड़ें बहुत गहरी हैं। जस्टिस विक्रमनाथ की बेंच ने "गैराजों में चल रहे लॉ कॉलेजों" पर चिंता जाहिर की है। पिछले दशक में बार काउंसिल के चेयरमैन ने कहा था कि एक तिहाई वकील फर्जी तरीके से वकालत कर रहे हैं। चीफ जस्टिस चन्द्रचूड़ की बेंच ने अप्रैल 2023 के फैसले से फर्जी डिग्री वाले वकीलों की पहचान का आदेश दिया था।

2. वकीलों की आपराधिकता से जुड़े मामले पर इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज ने बार काउंसिल, पुलिस, प्रशासन, रजिस्ट्रार सोसायटी आदि से रिपोर्ट मांगी थी। यूपी में 5.14 लाख रजिस्टर्ड वकीलों में सिर्फ 2.49 लाख के पास वकालत के लिए सर्टिफिकेट ऑफ प्रैक्टिस है। राज्य में 4157 वकीलों के खिलाफ 5056 आपराधिक मामले चल रहे हैं। 105 वकीलों की लॉ, स्नातक या हाईस्कूल की डिग्री फर्जी पाई गई है।

3. 1975 में जस्टिस कृष्णा अय्यर की 7 जजों की बेंच ने कहा था कि वकील न्याय के रक्षक हैं और उन्हें व्यापारियों के निजी गिल्ड की तरह बर्ताव नहीं करना चाहिए। वकील पर आपराधिक मामला चल रहा हो तो उसके जज बनने में मुश्किल हो सकती है। हाईकोर्ट जज के अनुसार वकीलों को भी रजिस्ट्रेशन के समय चरित्र प्रमाण पत्र के साथ आपराधिक मुकदमों का ब्योरा देना चाहिए। अपराधियों को बाहर करने से योग्य वकीलों को बढ़ावा मिलने के साथ ही अदालतों की गरिमा भी बढ़ेगी। इसके लिए देश में सभी बार संघों की जवाबदेही तय करने के लिए जज ने आदेश दिया है।

4. अवमानना के मामले में जेल भेजे गए एक यू-ट्यूबर ने अदालतों की कार्रवाई का लिखित ब्योरा दर्ज करने की मांग की है। सिर्फ इस एक कदम से फर्जी वकीलों पर रोक, भ्रष्टाचार में कमी के साथ जनता को जल्द और सही न्याय मिल सकता है। सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस नरसिम्हा की बेंच ने भी बार काउंसिल को आदेश दिया है कि वकीलों की अनुशासन-व्यवस्था का व्यापक ऑडिट करें। हाईकोर्ट जज ने भी सोसायटी एक्ट के अनुसार बार एसोसिएशंस में पारदर्शिता और जवाबदेही की बात कही है।

दैनिक जागरण

Date: 22-07-26

चिंतित करने वाला व्यापार असंतुलन

आदित्य सिन्हा, (लेखक लोक-नीति विश्लेषक हैं)

आप अपना फोन खोलिए। फोन की स्क्रीन, बैटरी, सर्किट बोर्ड और यहां तक कि चार्जर भी संभवत: चीन में बना हुआ हो। अब जरा इस पर गौर कीजिए कि भारत आखिर चीन को क्या बेचता है? सरकारी आंकड़ों पर नजर डालें तो पाएंगे कि हम झींगे, लौह अयस्क, नैफ्था, अरंडी का तेल, ग्रेनाइट, मिर्च और मानवीय केश ही उसे मुख्य रूप से निर्यात करते हैं। हम टीवी स्टूडियो में आत्मनिर्भर भारत की बात करते हैं, लेकिन आंकड़े अपनी कहानी स्वयं कहते हैं। वर्ष 2025-26 में भारत ने चीन से 131.6 अरब डालर का आयात किया, जो एक साल पहले की तुलना में 16 प्रतिशत अधिक रहा। इसी दौरान भारत ने चीन को 19.5 अरब डालर का निर्यात किया। इसमें 112 अरब डालर का व्यापार घाटा किसी भी देश के साथ सबसे बड़ा व्यापारिक असंतुलन है। हम चीन को एक रुपये का जो सामान बेचते हैं, उसके बदले में उससे सात रुपये का सामान खरीदते हैं। यह तब है, जब एक साल में चीन को हमारा निर्यात 36 प्रतिशत बढ़कर 13 अरब डालर हो गया है।

आयातित वस्तुओं की प्रकृति पर दृष्टि डालने से यह तस्वीर और स्पष्ट होती है। चीन से मंगाए गए 131.6 अरब डालर के सामान में से 75.8 अरब डालर यानी करीब 58 प्रतिशत में तो सिर्फ मशीनरी और इलेक्ट्रानिक्स की हिस्सेदारी थी, जबकि 27 अरब डालर की सामग्री में रसायन, प्लास्टिक और उर्वरक रहे। विश्व में अग्रणी औषधि निर्माता के रूप में भारत ने जो ख्याति प्राप्त की है, उसकी पूर्ति में चीन से मिले कच्चे माल की अहम भूमिका होती है। एंटीबायोटिक दवाओं के लिए ही 1.6 अरब डालर की सामग्री चीन से मंगाई गई। ऐसे में दो रुझान अलग से ध्यान खींचते हैं। पश्चिम एशिया युद्ध के दौरान जब खाड़ी देशों से आपूर्ति प्रभावित हुई तो चीन से यूरिया का आयात चार करोड़ डालर से सीधे बढ़कर एक अरब डालर पहुंच गया। भारत के टेक्सटाइल उद्योग की रीढ़ मानी जाने वाली मशीनें भी अब चीन से आ रही हैं और बुनाई मशीनों का आयात दोगुने से ज्यादा बढ़ गया, जबकि एम्ब्रायडरी मशीनों के आयात में 78 प्रतिशत का इजाफा हुआ। हालात ऐसे बन गए हैं कि हमारे करघे भी अब चीनी हो चले हैं। इस बहीखाते का दूसरा पहलू और भी कमजोर है। चीन को निर्यातित 19.5 अरब डालर के कुल निर्यात में 44 प्रतिशत हिस्सा प्राथमिक उत्पादों का था, जिन्हें जमीन से खोदकर, रिफाइनरियों से शोधित करके या समुद्र से निकालकर भेजा गया। एक ओर जहां हम चीन को अपनी मिट्टी, अपना समंदर और अपनी उपज सौंप रहे हैं, वहीं चीन हमें अपनी मशीनें बेच रहा है। हालांकि, इस परिदृश्य में उम्मीद की एक उजली किरण भी है। वह यह कि चीन को होने वाला भारत का इलेक्ट्रानिक्स निर्यात पिछले साल के मुकाबले लगभग चार गुना बढ़कर 0.8 अरब डालर से 3.2 अरब डालर तक पहुंच गया। किसी भी स्मार्टफोन का 'दिल' कहे जाने वाले 'असेंबल्ड प्रिंटेड सर्किट बोर्ड' यानी पीसीबी का निर्यात 3.6 करोड़ डालर से उछलकर सीधे 1.5 अरब डालर हो गया, क्योंकि

भारत में असेंबल होने वाले फोन अब चीन की अपनी सप्लाई चेन से ही पुर्जों की आपूर्ति को लेकर संतुलन साध पाए हैं। चीन से आने वाले 75.8 अरब डालर के भारी आयात के मुकाबले यह आंकड़ा भले ही अभी छोटा दिखे, पर यह इसका ठोस प्रमाण है कि जब वास्तव में फैक्ट्रियां अपनी जड़ें जमाने लगती हों तो व्यापार का रुख बदलना असंभव नहीं होता।

भारत के लिए आगे की सही राह तलाशने में कुछ पहलुओं पर ध्यान देना होगा। पहली बात यह कि मैन्यूफैक्चरिंग इंसेंटिव्स के दायरे को बढ़ाने के साथ ही उसे गहराई भी देनी होगी। उत्पादन आधारित प्रोत्साहनों यानी पीएलआइ ने देश में असेंबलिंग को तो बढ़ावा दिया, लेकिन इसके अगले दौर में फोन और मशीनों के अंदर लगने वाले पार्ट्स-जैसे बैटरी, डिस्प्ले, सर्किट बोर्ड और चिप्स निर्माण के लिए भी प्रोत्साहन देने होंगे। सर्किट-बोर्ड के मोर्चे पर मिली 1.5 अरब डालर की कामयाबी दर्शाती है कि जब आप सिर्फ बने-बनाए डिब्बों के बजाय उनके अंदर के पुर्जों पर दांव लगाते हैं तो वह तरीका वाकई कारगर होता है। हम दवाओं और उर्वरकों को सिर्फ वाणिज्यिक मुद्दा न मानकर रणनीतिक विषय मानें। जिन बल्क-ड्रग पार्कों का एलान सालों पहले हुआ था, उन्हें अब अविलंब सिरे चढ़ाने की आवश्यकता है। किसी एकाएक दस्तक देने वाले संकट के बीच हम चीन के साथ ही एक अरब डालर का उर्वरक सौदा करने के बजाय तीन-चार देशों के साथ दीर्घकालिक आपूर्ति के अनुबंध को वरीयता दें। घरेलू उत्पादन बढ़ाना तो और भी बेहतर होगा।

निर्यात के मोर्चे पर भी हमें मूल्य शृंखला की सीढ़ी में कुछ पायदान ऊपर चढ़ना होगा और यह ध्यान रखना होगा कि लौह अयस्क भारत से स्टील बनकर निकले, नैफ्था केमिकल्स बनकर और झींगे ब्रांडेड पैक्ड फूड बनकर। देश के भीतर प्रसंस्करण का प्रत्येक चरण 100 डालर के कच्चे माल को 300 डालर के तैयार निर्यात में बदलने में सक्षम हो सकता है। इससे स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन भी होता है। इस क्रम में ब्रिटेन और न्यूजीलैंड के साथ मुक्त व्यापार समझौते यानी एफटीए और यूरोप के साथ चल रही वार्ता उन्हीं वस्तुओं के लिए संभावनाएं तलाशने में जुटी हैं, जहां तैयार उत्पादों से बेहतर मूल्य प्राप्त हो सके।

हमें कुछ और पहलुओं पर भी काम करना होगा। जैसे उत्पादन इकाइयों को सस्ती एवं निर्बाध बिजली सुनिश्चित हो। बंदरगाहों तक पहुंच आसान हो। करों के स्तर पर अनिश्चिय दूर होने के साथ ही भूमि एवं श्रम से संबंधित नियम आसान बन सकें। चीन ने केवल सस्ते उत्पादों से ही भारतीय बाजार को नहीं पाटा, बल्कि तीस वर्षों के दौरान उसने अपने उत्पादन का स्तर बहुत व्यापक किया है। निवेश हासिल करने के लिए राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ाने और फैक्ट्री लगाने के लिए स्थिति को सुगम बनाना ही भारत की प्रगति से जुड़े आख्यान के अगले अध्याय को लिखेगी। इसमें आयात प्रतिबंध या किसी बहिष्कार वाले हैशटैग को चलाने से कोई मदद नहीं मिलने वाली। निर्भरता केवल उत्पादन से ही समाप्त हो सकती है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-07-26

बाहरी मोर्चे का प्रबंधन

संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गत 5 जून को घोषित रिवायती स्वैप सुविधाओं के तहत विदेशी मुद्रा का जुटान अब तक उम्मीद से बेहतर रहा है। सोमवार को केंद्रीय बैंक द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार एफसीएनआर (बी) जमा, विदेशी मुद्रा उधारी और बाह्य वाणिज्यिक उधारी के तहत जुटाई गई राशि 17 जुलाई तक 20.72 अरब डॉलर तक पहुंच गई। इनमें सबसे अधिक प्रवाह एफसीएनआर (बी) जमा से आया है। यह राशि करीब 17.41 अरब डॉलर रही। जैसा कि इस समाचार पत्र ने रिपोर्ट किया कि केंद्र सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को एफसीएनआर (बी) जमा के लिए लक्ष्य दिए हैं। उम्मीद है कि रिवायती सुविधाएं 30 सितंबर को बंद होने तक कुल लगभग 90 अरब डॉलर जुटाए जाएंगे।

अपेक्षाकृत उदार एफसीएनआर (बी) योजना और अन्य ऐसे उपायों के पीछे मूल विचार विदेशी मुद्रा प्रवाह को आकर्षित करना है जिससे रिजर्व बैंक वैश्विक अनिश्चितता के समय विदेशी मुद्रा भंडार बना सके। चूंकि भारत चालू खाते के घाटे (सीएडी) में है, जो कच्चे तेल की ऊंची कीमतों के कारण और बढ़ सकता है इसलिए इस अंतर को पाटने के लिए अधिक विदेशी प्रवाह की आवश्यकता है।

पूंजी खाते से लगातार निकासी ने हालात को और अधिक गंभीर बना दिया है। जिसके पीछे कई कारण हैं। इनमें भूराजनीतिक कारण भी शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि भारत ने पिछले दो वित्तीय वर्षों में भी भुगतान संतुलन घाटे का सामना किया है। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण होगा कि रियायती सुविधाओं के तहत आने वाले प्रवाह को कैसे संभाला जाता है। विदेशी मुद्रा भंडार में संभावित वृद्धि, अधिक प्रवाह के कारण, स्वतः ही रुपये के खिलाफ सट्टेबाजी को कम कर देगी। हालांकि इन प्रवाहों का उपयोग मूलभूत आर्थिक कारकों के विरुद्ध रुपये के बचाव के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

पश्चिम एशिया की स्थिति फिर बिगड़ गई है और इसका कोई स्पष्ट अंत दिखाई नहीं दे रहा। तेज गिरावट के बाद कच्चे तेल की कीमतें फिर बढ़ गई है जिससे रुपये पर दबाव पड़ रहा है। भारत को स्थिर और दीर्घकालिक पूंजी प्रवाह की आवश्यकता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विदेशी पूंजी का सबसे पसंदीदा रूप माना जाता है। हालांकि वर्षों से सकल एफडीआई अपेक्षित गति से नहीं बढ़ रहा, शुद्ध एफडीआई जो भुगतान संतुलन के लिए

महत्त्वपूर्ण है वह भारतीय कंपनियों के बाहरी निवेश और विदेशी कंपनियों द्वारा लाभ की वापसी के कारण दबाव में रहा है।

शुद्ध एफडीआई 2020-21 में लगभग 44 अरब डॉलर से घटकर 2024-25 में केवल 1 अरब डॉलर रह गया। इसके बाद इसमें सुधार हुआ है लेकिन आवश्यक स्तर तक नहीं पहुंचा। 2025- 26 में शुद्ध एफडीआई बढ़कर 7.65 अरब डॉलर हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते आकार और विदेशी कंपनियों की परिपक्वता को देखते हुए कुछ बाहरी निवेश और लाभ की वापसी अपेक्षित है। भारत को ऐसी परिस्थितियां बनानी होंगी जिससे अधिक निवेश आकर्षित हो और लंबे समय तक टिक सके। ऐसे प्रवाह के अभाव में भारत को अल्पकालिक प्रवाह पर निर्भर रहना पड़ता है जो अधिक अस्थिर होते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में नीति-निर्माता आयात घटाना चाह सकते हैं लेकिन यह लंबे समय में भारतीय अर्थव्यवस्था की मदद नहीं करेगा । उदाहरण के लिए पिछले सप्ताह इस समाचार पत्र की एक रिपोर्ट में बताया गया कि केंद्र सरकार राज्यों के साथ मिलकर 189 अरब डॉलर मूल्य के 1,200 से अधिक उत्पादों के आयात को प्रतिस्थापित करने यानी उनकी जगह देसी उत्पादन पर काम कर रही है। हालांकि नीति-निर्माताओं को हमेशा व्यवसायों के लिए बेहतर परिस्थितियां बनाने का लक्ष्य रखना चाहिए। भारत का निजी अनुभव दिखाता है कि आयात प्रतिस्थापन काम नहीं करता। यह इनपुट लागत और गुणवत्ता को प्रभावित करना शुरू कर सकता है जिससे निर्यातक प्रतिस्पर्धी नहीं रह जाते। इसके परिणामस्वरूप ऐसी नीतियां अक्सर उस समस्या को और बिगाड़ देती है जिसे वे हल करना चाहती हैं। दुनिया बदल रही है और भूराजनीतिक व्यवधान इसका केवल एक पहलू है। भारत को अपनी हितों की रक्षा करने और तेजी से विकास करने के लिए तथा वृहद आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए बेहतर रणनीति की आवश्यकता है।

Date: 22-07-26

16वां वित्त आयोग और केंद्र राज्य संबंध

एम गोविंद राव, (लेखक एनआईपीएफपी के पूर्व निदेशक हैं।)

संघीय व्यवस्था में केंद्र से राज्यों को होने वाले राजकोषीय अंतरण के चार महत्त्वपूर्ण आर्थिक कारण होते हैं। पहला, 'तुलनात्मक लाभ' के सिद्धांत के अनुसार, काम के बंटवारे और राजस्व के स्रोतों के बीच तालमेल न होने से असंतुलन ऊपर से नीचे तक दिखने लगता है। राज्यों पर बिना फंड वाले काम का बोझ न पड़े, इसके लिए इस असंतुलन को ठीक करने की जरूरत है।

दूसरा कारण, देश में 'बराबर वालों के साथ बराबरी का व्यवहार' करने के लिए आवश्यक है कि सभी राज्य कर संग्रह की समान क्षमता के साथ समान स्तर की सार्वजनिक सेवाएं दे सकें। इसके लिए राजस्व और लागत से जुड़ी कमियां पूरी करने के लिए अंतरण की आवश्यकता होती है।

तीसरा, जब सार्वजनिक सेवाओं की आपूर्ति में 'स्पिलओवर' (एक क्षेत्र में सेवा का लाभ दूसरे क्षेत्र को भी मिलना) की स्थिति हो, तो सेवाओं की अपर्याप्त आपूर्ति से बचने के लिए राज्यों को समान शर्तों के साथ अनुदान देकर सब्सिडी देना जरूरी हो जाता है।

आखिर में, केंद्र सरकार अनुदान देकर राज्यों की सेवाओं का इस्तेमाल अपनी तय जिम्मेदारियां पूरी करने के लिए एक एजेंसी के तौर पर कर सकती है। ऊर्ध्वाधर (केंद्र और राज्य के बीच) और क्षैतिज (राज्यों के बीच) असंतुलन ठीक करने के लिए दी जाने वाली रकम आम तौर पर कर के बंटवारे या शर्त रहित अनुदान के रूप में होती है, जबकि स्पिलओवर' प्रभाव दुरस्त करने के लिए आवंटन रकम समान शर्तों के साथ सशर्त होती है। एजेंसी के काम करने के लिए हस्तांतरण लागत की भरपाई के तौर पर सशर्त होता है। संविधान केंद्र और राज्यों की वित्तीय क्षमता एवं जरूरतों में संतुलन बनाने की जिम्मेदारी वित्त आयोग को सौंपता है। हर पांच साल में नियुक्त होने वाले इस आयोग का कार्य अन्य बातों सहित केंद्र एवं राज्यों के बीच और राज्यों के आपस में कर विभाजन के साथ ही राज्यों को राजस्व के लिए सहायता अनुदान देने की सिफारिश करना है। आयोग आने वाले पांच साल के लिए केंद्र और राज्यों की अनुमानित वित्तीय क्षमता और जरूरतों के आधार पर सिफारिशें करता है। इसके बाद कर बंटवारे योग्य कोष में केंद्र और राज्यों के बीच और राज्यों के आपस में हिस्से तय किए जाते हैं। इस कोष में कर संग्रह की लागत घटाने और उपकर एवं अधिभार से होने वाली कमाई हटाने के बाद बची हुई केंद्रीय कर की रकम शामिल होती है।

राज्यों का हिस्सा तय करते समय आयोग मुख्य रूप से राजस्व और लागत से जुड़ी कमियों और खर्च की आवश्यकता दिखाने वाले पैमाने पर विचार करता है। इस कार्य में निर्णय लेना जरूरी हो जाता है और जैसा चौथे वित्त आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति पीवी राजमन्नार ने कहा था, 'आयोग की सिफारिशें पांच लोगों या उनमें से ज्यादातर लोगों की निजी राय पर आधारित एक जुआ' होती हैं। फिर भी ये फैसले लेते समय उनसे उम्मीद की जाती है कि वे (1) सातवीं अनुसूची में बताए गए विभाजन के तरीके (2) व्यापक आर्थिक स्थिरता और केंद्र व राज्यों की विकास संबंधी जरूरतों और (3) कामकाज के क्षेत्रों में स्पष्टता का पालन करें। एक मध्यस्थ और अर्द्ध -न्यायिक विशेषज्ञ संस्था के तौर पर आयोग से निष्पक्ष रहने की उम्मीद की जाती है।'

शुरू में केवल व्यक्तिगत आयकर और केंद्रीय उत्पाद शुल्क से होने वाली कमाई ही बांटी जा सकती थी। दसवें वित्त आयोग की सिफारिश पर संविधान के 80 वें संशोधन ने सभी केंद्रीय करों को विभाज्य निधि में शामिल कर लिया। दिलचस्प बात यह है कि छठे वित्त आयोग तक बंटवारे का फॉर्मूला मुख्य रूप से केंद्र और राज्यों के बीच असंतुलन पर केंद्रित था और जाहिर है, राज्यों के बीच हिस्सेदारी मुख्य रूप से आबादी के आधार पर तय की जाती थी जिसमें व्यक्तिगत आयकर संग्रह को थोड़ा महत्त्व (10-20 फीसदी) और केंद्रीय उत्पाद शुल्क में कमी

को लगभग 10 फीसदी तवज्जो दी जाती है। राज्यों के बीच असंतुलन मुख्य रूप से अनुच्छेद 275 के तहत बिना शर्त वाले अनुदान के जरिये तय किया जाता था।

हालांकि, सातवें वित्त आयोग ने राज्यों का कर हिस्सा काफी बढ़ा दिया और फॉर्मूले में वित्तीय रूप से कमजोर राज्यों को अधिक महत्त्व दिया जिससे कर बंटवारे का मकसद केंद्र-राज्य और राज्यों के बीच दोनों तरह के असंतुलन से निपटना हो गया और अनुच्छेद 275 के तहत मिलने वाला अनुदान राज्यों की बची-खुची वित्तीय आवश्यकताएं पूरी करने का एक जरिया बन गया। इस नज़रिए से देखें तो, सोलहवें वित्त आयोग की यह सिफारिश कि कर अंतरण (राजस्व का हिस्सा) को 41 फीसदी पर बनाए रखा जाए और साथ ही राजस्व घाटा अनुदान को बंद कर दिया जाए, असल में वित्तीय स्थिति को केंद्र के पक्ष में संतुलित करती है। ऐसी सिफारिश राज्यों की तुलना में केंद्र की बढ़ती वित्तीय आवश्यकताओं का कोई ठोस सबूत दिए बिना की गई है। यह तर्क नाकाफी है कि राजस्व घाटा अनुदान तय करने के तरीके से गलत प्रोत्साहन मिलते हैं। संतुलन बनाए रखने के लिए अनुदान तय करने का तरीका बदला जा सकता था या विभाजन का हिस्सा बढ़ाया जा सकता था। केंद्र के पक्ष में संतुलन बदलने के निर्णय को सही ठहराना मुश्किल है, खासकर इसलिए क्योंकि केंद्र सरकार राज्य सूची में शामिल कार्यों के लिए केंद्र प्रायोजित योजनाओं पर काफी संसाधन खर्च करती है। इसके साथ रोजगार मेलों, सब्सिडी और अंतरण पर भी बड़ी रकम खर्च होती है। इसके अलावा, केंद्र सरकार उपकर और अधिभार लगाकर 'विभाज्य निधि' कम करती रहती है।

बांटे गए कर के राज्यों के बीच बंटवारे के लिए 16वें वित्त आयोग ने आय अंतर कारक (इनकम डिस्टेंस फैक्टर) को 42.5 फीसदी, जनसंख्या को 17.5 फीसदी, क्षेत्रफल और वन क्षेत्र को 10-10 फीसदी और एक नए कारक राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में राज्य के योगदान को 10 फीसदी भार (वेटेज) दिया है। पिछले आयोग की सिफारिश की तुलना में आय अंतर और जनसांख्यिकीय प्रदर्शन कारकों के भार दोनों में 2.5 फीसदी अंक की कमी की गई और क्षेत्रफल के भार में 5 फीसदी अंक की कमी की गई। आयोग ने कर प्रयास (किसी देश या राज्य सरकार द्वारा उसकी आर्थिक क्षमता के मुकाबले वास्तव में वसूले गए कर राजस्व का अनुपात) कारक को दिए गए 2.5 फीसदी भार को भी हटा दिया। इसने इन कारकों को मापने का तरीका भी बदल दिया।

जनसांख्यिकीय प्रदर्शन के लिए प्रजनन दर के व्युत्क्रम के बजाय इसने वर्ष 1971 और वर्ष 2011 की जनगणना के बीच जनसंख्या वृद्धि के व्युत्क्रम को आधार माना। इसी तरह, वन क्षेत्र वाले कारक को उसके घनत्व के आधार पर वेटेज दिया गया। यह साफ नहीं है कि आयोग ने एक नया कारक (राष्ट्रीय जीडीपी में राज्यों का योगदान) क्यों शामिल किया और इसे 10 फीसदी भार क्यों दिया। इससे भी अधिक हैरानी की बात यह है कि आयोग ने इस हिस्से का वर्गमूल लिया। इसे राजस्व या लागत संबंधी अक्षमता दर्शाने वाले कारक के तौर पर सही ठहराना मुश्किल है और न ही यह बेहतर वित्तीय प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहन के तौर पर काम करता है। विडंबना यह है कि यह आय में अंतर कारक के 'राजस्व अक्षमता' वाले तर्क के उलट है। इसे किसी तरह का

प्रोत्साहन भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि जीडीपी में कम योगदान देने वाले राज्यों का बुनियादी ढांचा खराब होता है और निश्चित रूप से उन्हें बराबरी का मौका नहीं मिलता।

जनसत्ता

Date: 22-07-26

लोकतंत्र की जगह

संपादकीय

यह एक आदर्श स्थिति है कि देश की संसद में विधायी कामकाज सामान्य तरीके से पूरा हो। इसे सुनिश्चित करने की जितनी जिम्मेदारी विपक्षी दलों की है, उससे ज्यादा बड़ा दायित्व खुद सरकार का है कि वह विवादित मुद्दों पर संवाद के जरिए आमराय बनाकर सदन का काम सुचारु रूप से पूरा होने की स्थितियां निर्मित करे। इसमें वैसे मुद्दे भी शामिल हैं, जो देश में किन्हीं वजहों से अचानक खड़े हो जाते हैं और जनता की ओर से उन पर सरकार से जवाब की उम्मीद या मांग की जाती है। विपक्षी दलों का कर्तव्य है कि वे जनता की नुमाइंदगी करते हुए उनकी आवाज, उनके मुद्दों को संसद में उठाएं और सरकार से जवाब मांगें। मगर इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि सरकार को इस तरह की स्थितियों में सकारात्मक माहौल बनाने के लिए अपनी ओर से पहल करना कोई गैर-महत्त्व की बात लगती है। इसका असर संसद की कार्यवाही पर भी पड़ता है। सवाल है कि देश की संसद अगर जनता के मुद्दों पर विचार और बहस के जरिए किसी निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए नहीं, तो आखिर किसलिए है!

गौरतलब है कि मंगलवार को संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही इसलिए स्थगित कर दी गई कि विपक्षी दल सरकार से इस पर जवाब चाहते थे कि एक दिन पहले दिल्ली में संसद मार्च के आह्वान के तहत जुटे युवाओं पर जिस तरह की पुलिस कार्रवाई देखी गई, उसकी जिम्मेदारी तय हो। मगर इसके बजाय दोनों सदनों में सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच हुए हंगामे की वजह से कार्यवाही स्थगित कर दी गई। स्वाभाविक ही विपक्षी दलों को यह आरोप लगाने का मौका मिला कि हम पुलिस के अत्याचार, प्रदर्शन कर रहे विद्यार्थियों पर लाठी चलाने और उनके घायल होने के मुद्दे पर सदन में चर्चा कराने तथा गृह मंत्री के बयान की मांग कर रहे थे, लेकिन सरकार ने चर्चा का अवसर नहीं दिया, हमारा मुंह बंद करा दिया। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष की ओर से अगर ऐसे सवाल उठाए जाते हैं, तो सरकार को इसे गंभीरता से लेना चाहिए।

विडंबना यह है कि न तो केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान का इस्तीफा मांग रहे आंदोलनकारियों से संवाद स्थापित करके कोई हल निकालने की कोशिश की गई और न ही संसद में इस मसले पर बहस के लिए सकारात्मक

माहौल निर्मित किया जा रहा है। सवाल है कि अगर सरकार को बातचीत के जरिए कोई रास्ता निकालना प्राथमिक और जरूरी नहीं लग रहा है, तो उसकी नजर में इसका क्या समाधान है। विपक्षी दल भी आम नागरिकों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर वे एक ज्वलंत मुद्दे पर बहस चाहते हैं और सरकार से जवाब मांग रहे हैं, तो इसे संवाद के रास्ते ही एक निष्कर्ष तक पहुंचाया जा सकता है। इसके बाद संसद में बाकी विधायी कामकाज भी सहजता के साथ निपटाए जा सकते हैं। मगर पिछले कुछ समय से सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच ज्यादातर मुद्दों पर मतभिन्नता सीधे टकराव का रूप लेने लगी है और सबसे आसान उपाय सदन को स्थगित करना मान लिया जाता है। क्या यह समस्याओं का हल तलाशने और जनभावनाओं को तुष्ट करने का कोई आदर्श उपाय हो सकता है? दोनों सदनों की कार्यवाही पर हर रोज करोड़ों रुपये का खर्च आता है। संसद की उपयोगिता का आधार लोकतांत्रिक संवाद ही है। अगर संवाद की जगह सिकुड़ेगी, तो लोकतंत्र कमजोर होगा और यह ध्यान रखने की जरूरत है कि देश की वास्तविक शक्ति लोकतंत्र में ही निहित है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 22-07-26

सिक्किम का हादसा

संपादकीय

सिक्किम के नामची जिले में एक जल-विद्युत परियोजना की निर्माणाधीन सुरंग में दस से भी अधिक मजदूरों की मौत की खबर बेहद मर्मांतक है। चिंताजनक बात यह है कि इस सुरंग में अब भी अनेक मजदूर फंसे हुए हैं। राहत और बचाव का कार्य शुरू हो चुका है। संतोष की बात यह भी है कि स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस दुर्घटना का संज्ञान लिया है और राज्य के मुख्यमंत्री प्रेम सिंह तमांग को हर मुमकिन मदद का भरोसा दिया है। इस दुर्घटना के शिकार लोगों के परिजनों को प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राहत कोष से दो-दो लाख रुपये के मुआवजे का भी एलान किया गया है। जिस समय सिक्किम में यह दुर्घटना घटी, लगभग उसी समय जम्मू-कश्मीर के पुंछ जिले में बादल फटने से एक पूरा परिवार जमींदोज हो गया। इस हादसे में सात लोगों के मारे जाने की सूचना है। पिछले दो दिनों से राजौरी और पुंछ में भारी बारिश व बादल फटने के कारण भू-स्खलन की घटनाओं में जान-माल का काफी नुकसान हुआ है। दो दिनों में 25 से अधिक लोगों की जान चली गई है। इस संख्या से ही घाटी के हालात की गंभीरता के संकेत मिल जाते हैं। चिंता

की बात यह भी है कि मौसम विभाग ने आगे भी भारी बारिश की चेतावनी जारी की है। ऐसे में, प्रशासन ने उचित ही लोगों को भू-स्खलन वाली जगहों पर न जाने की चेतावनी दी है।

कुदरती आपदा से सिर्फ जम्मू-कश्मीर त्रस्त नहीं है, असम में भी बाढ़ ने एक दर्जन से अधिक जिलों के लाखों लोगों के जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। करीब दस हजार हेक्टेयर में फसलें तबाह हो गई हैं और पटरियों पर पानी आने के कारण रेलगाड़ियों का परिचालन स्थगित करना पड़ा है या फिर उनके मार्ग बदलने पड़े हैं। असम में भी बाढ़ ने कई लोगों से उनकी जिंदगी छीन ली है। कुदरती आपदा पर तो मनुष्य का वश नहीं है, लेकिन विकास कार्यों में मानवीय चूक पूरी तरह रोकी जा सकती है। इस बात की गंभीरता से जांच होनी चाहिए कि एनएचपीसी तीस्ता स्टेज VI जल-विद्युत परियोजना में कहां गलती हुई थी? इस मौसम में वहां कार्य जारी रखने का क्या समुचित आकलन किया गया था? ऐसे हादसे बताते हैं कि हमें अधिक संवेदनशील कार्य-संस्कृति की कितनी जरूरत है? सिक्किम जैसी घटनाओं में जान गंवाने वाले ज्यादातर लोग मजदूर श्रेणी के होते हैं, जो अपने परिवार के आर्थिक संबल होते हैं, इसलिए उन्हें राज्य के साथ की कहीं अधिक दरकार है।

सिक्किम से लेकर जम्मू-कश्मीर तक के हादसों का अनिवार्य सबक यही है कि विकास कार्यों में प्रकृति के साथ समन्वय होना चाहिए। पहाड़ी इलाकों में आबादी में बढ़ोतरी के साथ नदी घाटियों के डूब इलाकों में लोग जा बसते हैं। ऐसे में, जब कभी बादल फटने की घटना घटती है, तो बड़ी संख्या में नुकसान होता है। हर साल मानसून के दौरान पहाड़ी प्रदेशों में ऐसी घटनाएं घटती हैं। समय आ गया है कि स्थानीय प्रशासन न सिर्फ ऐसी नई बस्तियों को बसने से रोके, बल्कि आशंकाग्रस्त बसाहटों को सुरक्षित जगहों पर बसाने की योजनाएं बनाए। इसी तरह, मानसून के मौसम में जब भू-स्खलन की सर्वाधिक आशंका होती है, तब सुरंगों के काम रोक दिए जाने चाहिए या फिर उनको निरापद बनाने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। निस्संदेह, पहाड़ी इलाकों को भी विकास की जरूरत है, मगर वह स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुकूल हो। ऐसा करके ही हम जान-माल के साथ-साथ पर्यावरण के नुकसान को थाम सकते हैं।

Date: 22-07-26

छात्र आंदोलन को मिली सियासी धार

आशुतोष ,(वरिष्ठ पत्रकार)

कॉकरोच आंदोलन ही मैं इसे कहूंगा। इस आंदोलन ने हमें चौंका दिया है। इसका मतलब साफ है कि युवाओं में गुस्सा बढ़ता जा रहा है। वे निराश हैं, तकलीफ में हैं और इंसाफ मांग रहे हैं, मगर उनकी आवाज को अनसुना किया जा रहा है। सवाल सिर्फ शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे का नहीं है, सवाल अब सरकार के इकबाल

और उसकी जवाबदेही का हो गया है। यह आंदोलन अब कुछ लोगों के हाथों के निकलकर आम जनता का हो गया है।

इस आंदोलन की आवाज में अब लोकसभा में नेता, प्रतिपक्ष राहुल गांधी ने भी अपनी आवाज मिला दी है। वह छात्रों पर हुए पुलिसिया अत्याचार के विरोध में अचानक प्रधानमंत्री आवास के सामने जाकर धरने पर बैठ गए। वैसे, राहुल नीट पेपर लीक पर लगातार आवाज बुलंद करते रहे हैं। कोटा और देहरादून में वह छात्रों से रूबरू हुए, मगर उनके इस हस्तक्षेप ने सरकार की परेशानी और बढ़ा दी है। शरद पवार और दूसरे नेता भी अब छात्रों की भीड़ में शामिल हो रहे हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मंगलवार की सुबह एनडीए की बैठक में अपने संबोधन के जरिये छात्रों को यह संदेश देने की कोशिश की कि उनके हितों के प्रति सरकार सजग है और पेपर लीक के लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ कानून के तहत कार्रवाई होगी। हालांकि, छात्रों का गुस्सा आज का नहीं है। हर बार जब पेपर लीक हुआ, तो छात्र सड़क पर उतरे और हर बार उनकी बातों को सुना नहीं गया। उन्हें बदले में मिली लाठियां। यह सब कुछ दिल्ली से बाहर हो रहा था। मीडिया ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। ऐसे में, गुस्सा खदबदाता रहा। जब प्रधान न्यायाधीश ने अपनी एक टिप्पणी में 'कॉकरोच' शब्द का प्रयोग किया और पांच दिन में दो करोड़ से ज्यादा लोग 'कॉकरोच जनता पार्टी' से जुड़ गए, तो यह एक असामान्य घटना थी। इसका साफ अर्थ था कि जमीन पर कुछ हो रहा था, जिसकी हवा हम लोगों को नहीं थी।

जब जंतर मंतर पर धरना-प्रदर्शन का एलान हुआ और शुरू में भीड़ नहीं जुटी, तो लगा कि यह कोई बुलबुला था, जो फट गया। फिर सोनम वांगचुक की 'एंट्री' ने हवा को थोड़ा बदला, आंदोलन को थोड़ी नैतिक आभा दी, लेकिन जब 17वें दिन उनकी तबियत खराब होने की खबर आई, तो हवा बदलने की फिर आहट आई और विस्फोट हुआ, जब उन्हें जबरन उठा लिया गया। संसद मार्च ने सबको गलत साबित किया, लेकिन यहां से अब आगे क्या? क्या यह जेपी आंदोलन साबित होगा, जिसने इंदिरा गांधी की सरकार पलट दी या फिर अन्ना का आंदोलन, जिसने यूपीए सरकार की जड़ों में मट्ठा डाल दिया?

हर आंदोलन की अपनी तासीर होती है और एक सीमा, क्योंकि वह अपने वक्त से नाराज लोगों का आवेश होता है, जो इंसाफ की पुकार करता है। इंदिरा गांधी के समय में छात्रों में आवेश था, बढ़ती बेरोजगारी व महंगाई से नाराजगी थी। उनका आंदोलन गुजरात से शुरू हुआ और बाद में भारत छोड़ो आंदोलन के नायक जय प्रकाश नारायण ने बुढ़ापे में इसको लीड किया। इंदिरा गांधी अपने अहंकार व असुरक्षा बोध में इसको नहीं समझ पाईं और आपातकाल लगाकर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली।

अन्ना आंदोलन की तुलना में कॉकरोच आंदोलन कई मामले में काफी भिन्न है। एक, अन्ना और जेपी आंदोलन की कमान मजबूत हाथों में थी। केजरीवाल के साथ सिविल सोसायटी के नामी-गिरामी लोग थे, जिनकी देश भर में प्रतिष्ठा थी। उनके साथ एक पूरी टीम थी और एक 'चेन ऑफ कमांड' थी। अन्ना चेहरा थे, लेकिन केजरीवाल

उस आंदोलन के रचयिता थे। ऐसा कॉकरोच आंदोलन के बारे में नहीं कह सकते। इस आंदोलन की नेतृत्व क्षमता पर गहरे सवाल हैं।

दो, कॉकरोच आंदोलन की वैसी तैयारी नहीं दिखती, जैसी अन्ना आंदोलन में थी। केजरीवाल ने आंदोलन शुरू करने के पहले काफी होमवर्क किया था। लोकपाल बिल को लेकर काफी सलाह-मशविरा किया गया था और साथ ही आंदोलन के पहले कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व सिविल सोसायटी के लोगों से मिलकर उन्हें भरोसे में लेकर आंदोलन शुरू किया गया था। इस आंदोलन में तैयारी की कमी साफ दिखती है। कॉकरोच आंदोलन अन्ना आंदोलन की तुलना में कहीं ज्यादा स्वत:स्फूर्त है।

तीन, कॉकरोच आंदोलन एक व्यक्ति विशेष को टारगेट कर रहा है। यह शिक्षा मंत्री के इस्तीफे पर अड़ा हुआ है, जबकि अन्ना आंदोलन व्यक्ति की जगह सिस्टम पर हमले कर रहा था। वह व्यवस्था पर सीधे प्रहार कर रहा था। उसको बदलने की बात कर रहा था।

चार, अन्ना आंदोलन ने सिर्फ सवाल खड़े नहीं किए, बल्कि उसने समाधान देने की भी कोशिश की। उसका तर्क था, भ्रष्टाचार से निपटने के लिए लोकपाल कानून बनना चाहिए और उसकी जद में प्रधानमंत्री तक को होना चाहिए। लोकपाल बिल अन्ना आंदोलन का सबसे विवादास्पद पहलू था। बुद्धिजीवी वर्ग इस मसले पर काफी बंटा हुआ था। एक तबके को लग रहा था कि संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री के ऊपर एक 'सुपरमैन' को आरोपित किया जा रहा है।

पांच, कॉकरोच आंदोलन एक ऐसे समय में अस्तित्व में आया है, जब समाज में विचारधारा के स्तर पर जबरदस्त ध्रुवीकरण है। माहौल ज्यादा विषाक्त और आक्रामक है। अन्ना आंदोलन के समय ऐसा नहीं था। सरकार ज्यादा संवेदनशील थी। उसने जंतर मंतर हो या फिर रामलीला मैदान, आंदोलनकारियों से संवाद बनाए रखा था और उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार हो रहा था, जरूरी कदम भी उठाए गए थे।

छह, अन्ना आंदोलन को मुख्यधारा के मीडिया, खासकर टीवी ने बहुत बड़ा कर दिया था। मीडिया का ऐसा समर्थन आज अनुपस्थित है। जब युवा सड़कों पर उतर गए, भीड़ बेतहाशा बढ़ गई, तो आंदोलन को कवर करना मजबूरी हो गई। इसके बावजूद मुख्यधारा के मीडिया का पूर्ण समर्थन उसे नहीं है। डिजिटल और सोशल मीडिया ने कॉकरोच आंदोलन को लोगों तक पहुंचाने में काफी मशक्कत की है।

हर आंदोलन का अपना ऐतिहासिक संदर्भ होता है और समय उसका आकलन खुद करता है। राहुल के दखल ने इस आंदोलन को एक नई शक्ल दी है। ऐसे में, अभी कॉकरोच आंदोलन को बस समझने की कोशिश की जाए। इतिहास को अपना फैसला देने दें।